'रसकपूर' उपन्यास का व्युत्पत्तिपरिशीलन

महासिंह सोढा
शोधछात्र
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

पं. मोहनलाल शर्मा पाण्डेय द्वारा अनूदित 'रसकपूर' उपन्यास भी कतिपय अंशों में इतिहास से सम्बन्ध रखता है, तथापि यह श्रृंगारप्रधान रचना है। इसके मूल लेखक आचार्य उमेश शास्त्री हैं किन्तु अनुवाद में भी अपनी प्रतिभा एवं पाण्डित्य का संयोजन कर पाण्डेय जी ने इस रचना को पर्याप्त प्रौढि प्रकर्ष प्रदान किया है तथा स्वरचित कृति की भाँति ही व्युत्पत्ति की अनूठी छाप छोड़ी है, अत: इसके व्युत्पत्ति परिशीलन का भी औचित्य लक्षित होता है।

इस उपन्यास के अनुवाद में अनुवाद की एक विशिष्ट शैली दिखायी देती है। यद्यपि इस शैली के बाणभट्ट, सुबन्धु, दण्डी अथवा अम्बिकादत्त व्यास की शैली का अनुकरण नहीं कहा जा सकता, यह तो अपनी आश्रिता के साथ जन्म लेने वाली पाण्डेय शैली है, जहाँ अत्यन्त सहजता एवं अतीव साध्यता से युक्त भाषिकी की प्रावाहिकता दिखायी देती है। अनुप्रास का सहज प्रयोग भाषा में प्राञ्जलता के साथ साथ माधुर्य एवं कालित्य का पुट उपस्थापित करता है। छायानुवाद में भी अलंकार-प्रयोगों ने सहृदयहृदयाह्लादकता को संवर्धित किया है जैसे:-

''भाटीकुलोत्तंसया महिलया नाशयितुं मदीयसत्तां माण्डलिकै: महीखण्डाखण्डलै: सामन्तेश्च साकं रचितं षडयन्त्रम्।[१]''

शब्दों के संस्कृतीकरण की प्रवृत्ति ने भी पाण्डेय जी की शैली को युगानुरूपता का वाँछित कलेवर प्रदान किया है। भाषान्तर के शब्दों का सुरुचिर संस्कृतिकरण पाठकों को प्रभावित किये बिना नहीं रहता। पाण्डेय जी के इस पाण्डित्य ने मानों संस्कृत के शब्दभण्डार की अभिवृद्धि में उल्लेखनीय योगदान दिया है। अनेक शब्द तो व्युत्पत्तिलभ्यार्थ से भी उसी तात्पर्य का शोध कराते हैं। इसके अतिरिक्त शब्दप्रयोग में पाण्डेय जी की मूल विशेषता यह रही है, कि वे रचना में लालित्य की अनिवार्यता को समझ कर यथोचित शब्दप्रयोग करते हैं। उनका सारा ध्यान इसी पर केन्द्रित रहता है, कि पदशय्या कहीं भी लालित्य को अतिक्रान्त न कर दे। इसी प्रकार

शब्दस्वारस्य एवं अर्थवत्ता की दृष्टि से अनेक स्थलों पर भाषान्तर के शब्दों को यथावत् अविकल रूप में भी ग्रहण किया है, जो नवाचार तो है ही किन्तु शब्दबोध को सहजता भी प्रदान करता है।

वैदुष्य एवं पाण्डित्य के धनी मानी पाण्डेयजी ने इतना ध्यान रखते हुए भी कहीं कहीं दुरूहता का समावेश कर दिया है, जिसमें प्रौढता तो परिलक्षित होती है, किन्तु कवित्व की नैसर्गिकता की समाप्ति भी लक्षित होती है। जैसे:-

''यदा मत्कृते प्रेषितं क्ष्वेडान्वितरसभरितपानपात्रन्दाहन्तन्दुष्टषण्ढमाह....।''

अथवा''यूथिकाकलिकागुम्फितधमिल्लकञ्चुकीकङ्कणकेपूरादयस्तारुण्यम्मे समृद्धमकुर्वन्।[३]''

यद्यपि कहीं कहीं ऐसे प्रयोग आ गये हैं, किन्तु विद्वज्जनों के लिए दुरूह नहीं है। सामान्य पाठकों की दुरूहता की प्रतीति होती है। अत: इस शैली में भी कथ्यगत भावनिर्झरिणी के निनाद की मधुर अभिव्यक्ति हुई है। सारांशत: यह कहना उचित होगा, कि संस्कृत शैली के इतिहास में यह अभिनव प्रतिमान है, जो अनुवादक के वैशिष्ट्य को उसी प्रकार भासित करता है, जैसे रचनाकार की अस्मिता भासित होती है।

संक्षेप में रसकपूर श्रृंगारिक गद्यकाव्य के व्युत्पत्तिपरिशीलन हेतु उसके आधारभूत तथ्यों पर समालोचनात्मक चिन्तन की प्रस्तुति द्रष्टव्य है:-

लोक

'रसकपूर' गद्यकाव्य का कथानक कुछ अंशों में इतिहास से जुड़ा हुआ है तथापि लोक में भी एतद्विषयक वृत्त प्रसिद्ध रहा है। रचनाकार ने दोनों को आधार बना कर इसका सृजन किया है। अनुवादक मोहनलाल पाण्डेय ने लोक के अनेक प्रासङ्गिक तथ्यों को समाहित कर उसे और भी उत्कृष्ट बना दिया है। इसमें अनुवादक के ऐसा करने पर भी मूल लेखक की मौलिकता की हानि नहीं हुई है, अपितु अनुवादक के व्युत्पत्तिज्ञान के समावेश से उसके मौलिक संयोजनों ने उसके सौन्दर्य को द्विगुणायित कर दिया है।

(क)स्थावर

स्थावर पदार्थों के चित्रण भी रसकपूर में देशकाल वातावरण की प्रस्तुति के उद्देश्य से ही किये गये हैं। चतुर्थ विराम में प्रारम्भ में जयपुर वर्णन की रोचक प्रस्तुति हुई है। मूल लेखक ने केवल भौगोलिक चित्रण ही प्रस्तुत किया था, किन्तु पाण्डेय जी ने जयपुर के राजप्रासादों, राजाओं, दर्शनीय स्थानों एवं मन्दिरों आदि का उल्लेख कर मानो वर्णन को मूर्त्तरूप प्रदान करने का सत्प्रयास किया है। कवि इसमें सफल भी रहा है, क्योंकि

अनुवाद में भी कवित्व के अनुरूप प्रतिमानों की योजना कर उसने मूललेखक के गद्य को गद्यकाव्य में परिणत कर दिया है:-

''अर्बुदपर्वतमालोपत्यकाङ्कमध्यभागो जयपुरनगरमेतत्कमठपृष्ठमिव राराज्यते। उत्तरास्यां दिशि शिखरिशिखरे यावनशासनसदृशसमृद्धकलावैभवपल्लविता अम्बापुरस्य सुधासिताः सुरम्याः सौधाः शोशुभ्यन्ते। अतएव कमठवंशभूभृत्पुरावृत्तस्य शुभारम्भः, धीरवीरगम्भीराणाम् अम्बापुरजयपुरशासकानां कूर्मवंशीयक्षत्रियवर्याणां कीर्त्तिकौमुदी काबुलाफगाानभूमिपर्यन्तं यत्र तत्र सर्वत्र प्राचङ्क्रम्यत। पूर्वस्यां दिशि श्रृङ्गिश्रृङ्गे गालवमुनेः सुरम्यभव्यमन्दिरराजितं पयःपूरपूरितकुण्डसमन्वितं पावनतीर्थं देदीप्यते। अत्रत्यानि सीताराम-गोपाल-गोपीनाथ-राधादामोदरादिदेवमन्दिराणि हिन्दूसंस्कृतियशोगाथासूचकानीव चाकाश्यन्ते। दक्षिणपश्चिमाशयोरन्तराले प्रत्यन्तपर्वतास्तृतभूगागो ब्राभ्रज्यते।[१]''

यहाँ अर्बुदपर्वतमाला का उल्लेख अरावली पर्वतमाला के लिए ही किया गया है। अनुवादक ने संस्कृत काव्यशैली के अनुरूप प्रतिभोत्कर्ष की प्रस्तुति के निमित्त रूचिर पदशय्या उपस्थापित की है, जिसमें लालित्य के साथ साथ प्रसाद की प्राञ्जलता भी विद्यमान है। सूर्यवंशीय क्षत्रियों के साथ उनकी कीर्त्ति के काबुल अफगान तक विस्तृत होने का उल्लेख अनुवादक के ऐतिहासिक ज्ञान को लक्षित करता है। गलता तीर्थ एवं देवमन्दिरों का उल्लेख उनके संस्कृतिप्रेम का परिचायक है तथा दक्षिण पश्चिम में पर्वतों का उल्लेख भौगोलिक ज्ञान को दर्शाता है। इसी प्रकार पाण्डित्यप्रदर्शन की दृष्टि से राराज्यते, शोशुभ्यन्ते, प्राचङ्क्राम्यत, देदीप्यते, चाकाश्यन्ते, बाभ्राज्यते आदि विशिष्ट क्रियापदों का प्रयोग किया है, जो पाण्डेयजी की अनुवादकला का अद्भुत नमूना है तथा इसने उनकी काव्यशैली को सामान्य से असामान्य बना दिया है।

पंचम विराम में अम्बापुर दुर्ग का वर्णन भी अतिरमणीय रूप में प्रस्तुत हुआ है। कवि ने प्रकृतिचित्रण का अवलम्बन लेकर दुर्ग को मूर्त्तिमान् कर दिया है। उद्यान का चित्रण भी अभूतपूर्व है। ब्राह्मोद्यान में राजप्रसाद का चित्रण पर्याप्त मनोहारी है। सप्तम विराम में राजसदन एवं वेश्याभवन का तुलनात्मक चित्रण भी साम्य वैषम्य प्रदर्शन में अनुवादक की प्रतिभा को स्पष्ट आभासित करता है। एकादशवें विराम में रत्नसदन का चित्रण भी अभूतपूर्व है-

''महार्हमणिनिचयोपचितं राज्यसभाप्रधानसिंहासनमागन्तुकानाञ्चक्षुष्सु चाकचिक्यं चेक्रीयते स्म। इति तु पूर्वमेव निवेदितं यन्नगरमेतद्रत्नसदनम्। वेविद्यन्ते महाराजकोषालये महामूल्यानि विचित्राणि रत्नानि। यदान्नदात्रा सार्धञ्जयदुर्गद्रविणालयमपश्यन्तदा तु देदीप्यमानहीरकादिरत्नभाभिर्विस्मयसागरे

निमग्ना:सञ्जाता। जीवने नावलेकितानि कदाचनेदृशाणि भव्यानि श्रेष्ठतमरत्नानि येषां सत्ता कुत्रचिदेव स्यात्।[२]''

यहाँ कवि ने अलंकृत शैली का अवलम्बन ले कर भावोन्मेष को वैचित्र्य प्रदान किया है, जिससे यह वर्णन पाठकों के आकर्षण का केन्द्र बन सका है। चाकचिक्यं चेक्रीयते स्म में अनुप्रास की सहजता असाधारण पद प्रयोगक्षमता को दर्शाती है।'अन्नदाता' शब्द का प्रयोग राजस्थान के राजपरिवारों में प्रयुक्त सम्बोधन की दृष्टि से किया गया है जो शैली में स्वाभाविकता भी उचित समावेश करता है। काल्पनिकता से सुदूर रह कर लोक के यथार्थ को भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने में पाण्डेय जी का वैदुष्य वस्तुत: वन्दनीय है।

(ख)जंगम

सजीवप्राणियों के चित्रण के भी अनुकूल अनेल स्थल रसकपूर उपन्यास में उपलबध होते हैं, जिनके अनुवाद में पं. मोहनलाल शर्मा पाण्डेय ने अपने प्रतिभा तथा पाण्डित्य की रोचक प्रस्तुति की है। गद्यकाव्य की नायिका रसकपूर द्वारा किया गया अपनी उत्पत्ति के सन्दर्भ में पण्डित पिता का चित्रण अत्यन्त हृदयहारी है। पाण्डेय जी ने वर्णन में प्रभावशालिता का उचित समावेश किया है। अन्तर्द्वन्द्व की आत्माभिव्यक्ति के अन्तर्गत प्रासङ्गिक वर्णन की स्वाभाविक प्रस्तुति अनुभूति की सूक्ष्मता का श्रेष्ठ उदाहरण कही जा सकती है–

''न जाने भवद्धिर्माद्विषये का कल्पना करिष्यते? परन्तथ्यं कथं वितथं विधातव्यम्। अहमस्मि तद्भागधेयविहीनमपत्यं यन्निजपित्रोरुपरि पङ्कप्रक्षिपामि, स्वात्मानञ्चावैधानिकापत्यकथनादपि नो बिभेति। प्रसूर्मे पण्डितप्रवरप्रौजोमाधुर्योपरि मुग्धा सञ्जाता। पण्डितस्यैतस्य बलिष्ठं वपु:, राजितरूपरङ्ग, दृष्टिगोचर विश्वाससागर:, मधुराघरमोदमानं माधुर्यं, जानुपर्यन्तं लम्बमानकौशेयकञ्चुक:, कर्णोत्पलचुम्बन-चपलाश्चञ्चलचञ्चरीका इव चिकुरा:, नेत्रसम्पृक्तं घनसारसौवीरं कञ्चुकपार्श्वकोषीकृतो विस्तृतप्रान्तावदातधौताञ्चल:, करतलधृतस्ताम्बूलकरङ्क:, अपरकरधृतानि नीतिशास्त्रपुस्तकानि, इत्थं समष्टिभूतं मधुरं व्यक्तित्वं कस्य मनो न मोहयेत्। प्रसूम्प्रति पण्डितेन तेन परा प्रियता प्रदर्शिता मे पित्रा। एकदा तु भावनादमनादक्षेण तेन स्पष्टत: प्रोक्तं यत्तवानुरागरोगिणा मयाऽभवि।[३]''

उपर्युक्त उदाहरण में पाण्डेय जी ने रसकपूर के पिता के शारीरिक गठन का जो चित्रण प्रस्तुत किया है, वह उसके मूर्त्तिमान स्वरूप को उपस्थित कर देता है। विशेषणों का प्रयोग प्राय: साभिप्रायिक है। पण्डित पिता के व्यक्तित्व का रसकपूर के मुख से किया गया यह प्रस्तुतीकरण उसकी हृदयगत भावनाओं को भी द्योतित करता है। यद्यपि प्रारम्भिक वाक्यविन्यास में पश्चात्तापाभिव्यक्ति प्रस्तुत हुई है, किन्तु कथ्य के अन्त में पितृहृदय के

प्रियत्व का अनुमान उसके मन में निष्ठा को अभिव्यंजित करता है। कर्त्तृवाच्य के साथ साथ कर्मवाच्य के प्रयोग में भी सहजता का उपस्थापन पाण्डेय जी के व्याकरणज्ञान की सूक्ष्मता को लक्षित करता है, जिसमें उनकी प्रतिभा स्पष्ट झलकती है।

इसी प्रकार सद्य:स्नाता नायिका के वर्णन में भी कवि ने सौन्दर्य का तलस्पर्शी साक्षात्कार कराया है। यहाँ भी स्वयं नायिका ही अपनी स्थिति को वर्णित करती है:-

''पुनः प्रातरिव स्नानसदनं प्रापिता। स्नानसदने तदा स्वयमेव निष्पादिता स्नानक्रिया। शिशिरसुरभितसलितभरितविशालताम्रपात्रे निमज्जिता स्वीया कोमलकायलता यथा मलयज-चूर्णसुवासितसरस्यां हंसिनी स्वात्मानं निमज्जयेत्। शीतलसुवासितसलिलस्पर्शेण मे प्रतिरोमस्फूर्त्तिः समागता। स्नानोत्तरं परिधृतहिमावदातदेहे फिरोजीयचण्डातकपुन्नागफलरागरञ्जितबृहतिकाप्रभृति परिधानम्। पुरुषापादपहरितशाखाद्योतितफलनक्षत्राणीव व्यराजन्त बृहतिकाखचितदेदीप्यमानमौत्तिकानि। अगुरुधूपैर्धूपायितं केशवृन्दम्: परन्न निबद्धं तत्, अपितु यत्र तत्र पाटलयूथिकामालतीप्रसूनैः सज्जीकृतम्। हस्ते कुमुदपुष्पमादाय प्रियतमप्रतीक्षापरायणमानसा संजाता।[२] ''

इस उद्धरण में भी स्नानक्रिया की आनन्तरीयानुभूति में पाण्डेय जी ने मानो अलौकिकता को दर्शाने की चेष्टा की है। स्वयं नायिका वेश्या होते हुए भी स्नानानन्तर अपनी तुलना हंसिनी से करती है। ताम्रपात्र को चन्दगन्ध से सुगन्धित सरोवर के तुल्य बतलाना कवि की कल्पनाप्रवणता को भी प्रस्फुटित करता है। जलस्पर्श से स्फूर्त्ति का उद्गम स्वानुभूत सत्य है। स्नानानन्तर वस्त्रधारणक्रम में भी पाण्डेय जी ने क्रमशः चण्डातक एवं बृहतिका का उल्लेख किया है तथा उनके वैशिष्ट्य को सौन्दर्य का अभिव्यंजक बतलाया है। यह पाण्डेय जी के मनस् की परिकल्पना है। दीप्तिमान मुक्ताओं की नक्षत्रों से तुलना प्रदर्शित करने में भी पाण्डेय जी की अलंकृत शैली पर्याप्त प्रशंसनीय है, जिसने उपमा एवं उत्प्रेक्षा के माध्यम से कथ्य को हृद्य बना दिया है।

ऐसे अनेक वर्णन रसकपूर में प्राप्त होते हैं जहाँ कवि ने सजीवों के चित्रण में अपनी बौद्धिक क्षमता का भरपूर उपयोग किया है।

शास्त्रीय

अनूदित कृति रसकपूर में भी पं. मोहनलाल शर्मा पाण्डेय अपने शास्त्रज्ञान का वाँछित उपयोग करते हैं। विविधशास्त्रों के उद्धरण वे प्रासङ्गिक तौर पर प्रस्तुत करते हैं, तो कतिपय स्थानों पर वर्णन-विशेष हेतु उन्हें

आधाररूपता भी प्रदान करते हैं।

धर्म

अनुवादक पं. पाण्डेय ने नायिका के प्राथमिक अन्तर्द्वन्द्वात्मक वक्तव्यों में हिन्दु एवं मुस्लिम दोनों सम्प्रदायों के प्रति तद्गत चिन्तन की प्रस्तुति उपस्थापित की है, जिससे पाण्डेय जी का दोनों संप्रदायों की वस्तुस्थिति से सुपरिचित होना लक्षित होता है–

''विहितममरमन्दिरेषु त्रिदशदर्शनम् पुरावृत्ता प्रार्थना, माधरीकृतभविद्योतिता शुद्धाज्यभृतो दीपकाः, तुलसीदलपरिपूतभगवच्चरणारविन्दामृतमपिमंजूरीकृतम्। जुगुप्साभावनान्वितया मया नैव सनातनधर्मो व्यलोकि, अपितु रासविहारिणो रसस्वरूपिणो रासलीलां लक्ष्यीकृत्य गोकुलगोपाङ्गनेवाहंप्रेमभावावृतमानसा नर्तनशीला संजाता।[१]''

यहाँ पाण्डेय जी ने हिन्दुधर्म की पूजा पद्धति के उपचारों यथा दीपक तुलसीदल चरणामृत आदि का तथा उनकी विशेषताओं का उल्लेख किया है। सनातन धर्म के प्रति नायिका की श्रद्धा की अभिव्यक्ति के माध्यम से मानो उन्होंने विधर्मियों के भी धर्मानुराग को रूपायित किया है। भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति प्रणयभावाबद्ध गोपाङ्गना से तुलना तथा नर्तकी होने पर भी ईश्वर के प्रति प्रणयानुराग का चित्रण प्रस्तुत कर पाण्डेय जी ने प्रकृत कथासूत्र में पर्याप्त नवीनता ला दी है, जो उनकी प्रतिभा का बेजोड़ उदाहरण कहा जा सकता है।

इसी प्रकार –

''यावनधर्मकारिका अप्यधीताः, अल्लामुपयाचितं किमपि, रमजानव्रतान्यङ्गीकृतानि। वस्तमेधदिनमपि सविलासं सोल्लासं समुल्लासितम्। यावनधर्मप्रवर्तकमोहम्मदसिद्धान्ततितशान्तस्वान्तया मया मातृरूपशक्तिप्रतीकामल्लां प्रति विहितोऽमितो दृढप्रत्ययः।[२]''

इस उद्धरण में भी पाण्डेय जी ने यवनधर्म के आराध्य अल्लाह का तथा तन्निमित क्रियमाण रमजान माह के व्रतदिवसों को उल्लेख कर उससे अभिज्ञता को दर्शाया है। बकरीद के उल्लास की अभिव्यक्ति से यवनधर्मावलम्बियों की सहर्ष पर्वसम्पादनेच्छा अभिव्यक्त की है। यवनधर्म के प्रवर्तक मोहम्मदशाह के सिद्धान्तों के प्रति यवनों की स्वाभाविक नैष्ठिकता को दर्शाया है। पाण्डेय जी ने अल्लाह के लिए केवल 'अल्ला' शब्द का प्रयोग किया है, जो उनके उच्चारणसाध्यानुकूल है। इसी प्रकार उन्होंने उसे मातृशक्ति का प्रतीक बतलाया है जिसमें कोई न कोई गूढ रहस्य अवश्य है, किन्तु हम उससे अनभिज्ञ हैं।